



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2014; 1(1): 341-342
www.allresearchjournal.com
Received: 08-10-2014
Accepted: 22-11-2014

डॉ. अनिल गुप्ता
सह-आचार्य (चित्रकला),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर, राजस्थान, भारत

अमूर्त कला का प्रादुर्भाव (परिस्थिति, अवधारणाएँ, रूपरेखा एवं उद्गम)

डॉ. अनिल गुप्ता

सारांश :-

अमूर्त कला में किसी न किसी रूप से कला तत्व मौजूद रहते हैं। अमूर्त कला से कलाकार अपने विचारों की प्रस्तुती करता है, जो परोक्ष या अपरोक्ष रूप से समाज में मौजूद सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि आडम्बर और विकास को उसके अपने अनुभव के आधार पर समझने का प्रयत्न करता है। साथ ही प्रकृति की अपनी सत्ता को भी वह समझता है। क्योंकि उसका जन्म एवं विकास यही हुआ है, तो अमूर्त कला का जन्म एवं विकास भी यह हुआ है। हम किसी भी तरह उसको समाज से अलग नहीं देख सकते।

मूल शब्द :- अभिव्यंजना, वस्तुनिरपेक्ष, कुतुहल, ध्वनि, अमूर्त, प्रादुर्भाव

प्रस्तावना :-

कला का जन्म इतिहास से पूर्व होने के कारण हम केवल शेष कला अवशेषों के आधार पर ही उस समय की कल्पना मात्र करते हैं। मानव जीवन के लिए कला की ऐसी कौनसी आवश्यकता है जिसमें कला का जन्म हुआ। इतिहास के विचारों एवं कला अवशेषों से ऐसा मालूम पड़ता है, कि कला मानव के अभिन्न अंग के रूप में हमेशा विद्यमान रही है। समयानुसार कला मानव जीवन के विभिन्न क्रिया कलाओं के साथ जुड़ी हुई थी और किसी न किसी रूप में आगे भी जुड़ी रहेगी।

कला के जन्म के बारे में हमें इतना जानना जरूरी है, कि आरम्भिक मनुष्य ने अपने सहज मनो-विकारों की अभिव्यंजना में ही कला-रूपों का श्री गणेश किया होगा। इसमें जादू-टोना या अन्धविश्वास जैसी किसी भावना की आवश्यकता नहीं थी। इससे यह सिद्ध होता है कि कला का आरम्भ धर्म से पूरी तरह स्वतंत्र रूप में हुआ था। अतः यह धर्म से स्वतंत्र होकर जीवित भी रह सकती है।

उन्नीसवीं सदी में हुए यूरोपिय औद्योगिक विकास वैज्ञानिक क्रांति एवं राजनीतिक व सामाजिक उथल-पुथल ने कलाकारों को भी स्वतंत्र विचार से सर्जन करने को प्रेरित किया व मुख्यता इसके परिणामस्वरूप कलाकारों के नयी दिशाओं में उठाये गये कदमों के भिन्न नये कला प्रवाहों को जन्म दिया जिनमें एक प्रवाह वस्तुनिरपेक्ष कला का था। जिसे वर्तमान में अमूर्त कला के नाम से भी जाना जाता है।

भारतीय कला में आत्मसात करने की अपूर्व क्षमता रही है जो भी प्रभाव आया इसके खून में समा गया और इसके अंतर से ऐसी कला धारा बही जो अत्यन्त मौलिक एवं नवीन थी। एक ही सूत्र में बंधी होने पर भी हर काल की भारतीय चित्रकला अपना पृथक अस्तित्व रखती है।

कलाओं की उत्पत्ति आदिम अवस्था में आत्माभिव्यक्ति, अलंकरण, प्रियता, प्रकृति की शक्तियों की उपासना, कुतुहल मनोरंजन आदि किसी एक या समस्त प्रवृत्तियों में से हुई होगी। आज यह स्थिर करना बहुत कठिन होता है, कि इनमें से कौनसी प्रवृत्ति सर्वप्रथम कलाकृतियों के निर्माण में सहयोग हुई थी, केवल ये कहा जा सकता है, कि आदिम मनुष्य के आरम्भ में उसके क्रिया कलाओं तथा वृत्तियों में से अनेक कलाओं की पृष्ठभूमि बन चुके थे। उसमें मन ही मन में प्रकृति की शक्तियों के अनुसार सुन्दर अथवा भयंकर रूप कल्पित कर लिये थे और इन्हें पर्वतों, वृक्षों, पशुओं तथा पक्षियों आदि से संबंधित अनुमानित किया था। इस प्रकार उसकी आरम्भिक बिम्बयोजना जन्म ले चुकी थी। जो आगे चलकर कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित हुई, इससे पूर्व यह इन रूपों की मूक अभिव्यक्ति करता रहा होगा, केवल मन में या केवल नेत्रों से या केवल अनियंत्रित और अस्पष्ट सी चेष्टाओं तथा ध्वनियों से। अथवा ये अनुभूतिया उसके मन में संचित और घनी-भूत होती रही और सर्वप्रथम उसकी इन घनीभूत अभिव्यक्तियों का विस्फोट हुआ होगा।

Correspondence:

डॉ. अनिल गुप्ता
सह-आचार्य (चित्रकला),
राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट,
जयपुर, राजस्थान, भारत

उसकी शारीरिक क्रिया-शीलता में अचानक बार-बार चिखने या किसी प्रकार की ध्वनि करने में बार-बार उछलने में, कूदने अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक बार-बार दौड़ने अथवा चक्कर लगाने में, अपने समूह के अन्य साथियों सहित एक साथ कोई आवाज या शोर करने में या फिर पूरे समूह द्वारा एक साथ उछलने-कूदने तथा साथ ही किसी प्रकार की ध्वनि करते जाने में आदि-आदि अनेक कारण हो सकते हैं जो मानव मन में उठ रहे उल्लास की सहज अभिव्यक्ति बनकर कला रूप में उत्पन्न हुए। धीरे-धीरे मनुष्य के क्रिया-कलाओं के क्षेत्र का भी विस्तार होने लगा उसके अनुभवों में वृद्धि हुई और उसमें स्मृति, इच्छा, कल्पना आदि शक्तियों का आविर्भाव हुआ।

आरम्भिक मनुष्य केवल दृश्य जगत से ही परिचित था और उसकी इच्छा शक्ति भी उन्हीं तक सीमित थी। आगे चलकर वह ऐसी वस्तुओं की कल्पना भी करने लगा जो भी उन्हीं तक सीमित थी। इससे आगे चलकर वह ऐसी वस्तुओं की कल्पना भी करने लगा जो उसने न कभी देखी थी और न कभी सुनी थी, ये सब अज्ञात और अमूर्त थी इनसे उसकी भावनाओं और इच्छाओं का विस्तार हुआ। वह जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आया उनसे अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता मिलने के आधार पर वह उनके अच्छे-बुरे, सुन्दर, असुन्दर, उपयोगी-अनुपयोगी और उचित-अनुचित आदि भेद करने लगा। किन्तु इस प्रकार का विभाजन भी अचानक न होकर बहुत समय में सम्भव हुआ होगा। इसलिए यह समझा जाता है, कि प्रकृति से संघर्ष करते हुए सभ्यता के विकास के क्रम में ही मनुष्य ने सौन्दर्य बोध प्राप्त किया।

प्रकृति से संघर्ष करते हुए मनुष्य ने जो सौन्दर्य-बोध प्राप्त किया था उसने सृष्टि के प्रति मनुष्य की दृष्टि को ही बदल दिया वह सभी वस्तुओं के अनुकूल सुन्दर तथा उपयोगी रूपों और परिस्थितियों की कल्पना करने लगा। इस प्रकार उसकी अभिव्यंजना दो रूपों में विभक्त हो गयी।

एक वह जो उसकी दैनिक आवश्यकताओं तथा इच्छाओं से संबंधित थी और दूसरी वह जो कल्पना के सहयोग से वस्तुओं सम्भावित रूपों तथा परिस्थितियों को व्यक्त करती थी। यह दूसरे प्रकार की अभिव्यंजना ही कलात्मक क्रिया कलाओं का आधार बनी।

विभिन्न माध्यमों का सहयोग पाकर इसका विकास भिन्न-भिन्न कला-रूपों में होने लगा। आरम्भिक मनुष्य के पास प्रकृति की सबसे बड़ी देन उसका अपना शरीर था। इस माध्यम के विभिन्न अवयवों, हाथ-पैर, कण्ठ तथा नेत्र आदि को उसने भावाभिव्यंजना में विशेष समक्ष पाया जिनमें क्रमशः अभिनय, नृत्य, भाषा एवं गायन (संगीत) का विकास हुआ।

इन्हें सहज कलाओं की श्रेणी में रखा जाता है। प्रकृति से उसे जो अन्य सामग्री थी उनसे मूर्ति, चित्र तथा वास्तुकला का विकास हुआ। पदार्थों पर आघात करने से जो कम्पन अथवा ध्वनियाँ उत्पन्न होती थी उनसे वाद्य-संगीत ने जन्म लिया।

चित्रकला से ही चित्रलिपि का विकास हुआ जिसमें प्रत्येक भाव को व्यक्त करने के लिए चित्र बनाये जाते थे। ये चित्र धीरे-धीरे सरल होते गये और अन्त में ये लिपि में बदल गये। भाषा का और अधिक विकास होने पर लिपि का प्रत्येक चिन्ह किसी भाव या वस्तु का प्रतीक न रहकर उच्चारित की हुई ध्वनियों का प्रतीक बन गयी।

आरम्भ में जो मुद्राएँ एवं ध्वनियाँ प्रत्यक्ष पदार्थों को व्यक्त करती थी वे ही कालान्तर में भाव व्यक्त करने लगी जैसे एक आदिम जाति के मुँह पर रखी उंगली को कुद दूर तक सीधी चलाकर सत्यवादी मनुष्य का भाव व्यक्त किया जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि अकस्मात् मुख से निकली हुई चीख जो आरम्भ में कबीले के दूसरे सदस्यों को आकर्षित करती अथवा बुलाती थी आगे चलकर सार्थक शब्दों में परिणत हुई।

काण्डवेल के विचार से भी शब्द एक प्रकार की मुद्रा है, एक चिख है।

इस प्रकार आरम्भिक भाषा के तीन रूप विकसित हुए – मुद्रा, मौखिक भाषा और लिखित भाषा। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि भाषा के मुद्रागत, मौखिक तथा लिखित रूप पूर्णतः एक दूसरे से पृथक हो गये। वस्तुतः हमारी अभिव्यंजना की सभी शक्तियाँ अपूर्ण हैं। किसी भाव को समझने के लिए किसी एक माध्यम को अन्तिम रूप से सफल नहीं कहा जा सकता आज भी हम बात करते हुए केवल मौखिक भाषा का प्रयोग नहीं करते। शरीर के विभिन्न अंगों से कुछ न कुछ चेष्टाएं करते हैं, जैसे यदि हम किसी से कहते कि हमें नींद आ रही है, तो मुख से यह बात कहने के साथ-साथ आंखों की पलके बन्द करके भोंहे किंचित चढ़ाकर माथो को कुछ सिकोड कर तथा सिर को आगे या पीछे ले जाकर या तिरछा करके अपने चेष्टाओं द्वारा भी नींद का भाव प्रकट करते हैं ऐसा करते हुए हम यदि मुख से कुछ न भी कहें तब भी दूसरे लोग तुरन्त यह समझ लेते हैं कि हमें नींद आ रही है।

भाव प्रकाशन की उक्त परिस्थिति के उदाहरण से यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि सभी कलाओं में भाव-व्यंजना के अलग-अलग माध्यमों की क्षमता का विकास हुआ है, तथापि कोई भी कला पूर्ण विकास का दावा नहीं कर सकती। इसलिये कलाओं में परस्पर निर्भरता अनिवार्यतः छिपी रहती है। व्यंजना के एक माध्यम के साथ दूसरे माध्यम का प्रयोग अभिव्यक्ति (भाषा) की प्रभाव वृद्धि में बहुत सहायक होता है।

उपरोक्त विचारों से पता चलता है कि ये भाव, भाषा, ध्वनि, संकेत, चित्र या विचार आदि ने कला को किस तरह जन्म दिया ये सब अमूर्त था। परन्तु उसमें भावोद्धीपन का सामर्थ्य था उसमें आन्तरिक चैतन्य था तभी तो लाखों वर्षों बाद भी उसे जानने, समझने का प्रयत्न करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. साखलकर रवि. 'कला के अन्तःदर्शन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1997, पृष्ठ 17.
2. वर्मा अविनाश बहादुर "भारतीय चित्रकला का इतिहास" प्रकाश बुक डिपो बरेली 1980,
3. ब्लूम फील्ड लियोनार्ड : अनुवाद सत्य जीवन वर्मा "भाषा की उत्पत्ति" मासिक सरस्वती अप्रैल, 1924, पृष्ठ 4,11,13.
4. Munn Lnorman. The Evolution and growth of Human Benaviour, 341-42.
5. Caud Well Christopher. Ilusion & Peality, 139.
6. Munn Lnorman. The Volution and growth of Human Benavior, 341.42.
7. Leonard Bloomfield. The art of symbolishing particular from of speech by means of particular visible marks of lansuaue languse, 40.sa.